आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज का

जीवन परिचय

पूर्व नाम	- पारसचंद जैन
पिता जी	- श्री शिखरचंद जैन
माता जी	- श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	- 11.9.1967, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	- फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	- पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.)
शिक्षण	- बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	- 19.12.1984, अतिशय क्षेत्र, पनागर (म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	- 1985, सिद्धक्षेत्र अहारजी (म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	- 8.11.85, सिद्धक्षेत्र अहारजी (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	- 10.7.1987, अतिशय क्षेत्र थूवोनजी
मुनि दीक्षा	- 31.3.1988, सि.क्षे. सोनागिरजी, महावीर जयन्ती।
दीक्षा गुरु	- आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज
आचार्यपद	- 25.01.2015 (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)

कृतियाँ व रचनाएँ

अध्यात्मिक प्रवचन, आर्जव कविताएँ, पर्युषण पीयूष, जैनागम-संस्कार (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, तमिल भाषा में), आगम-अनुयोग (भाग 1, 2), तीर्थोदय काव्य, लोक कल्याण विधान, सदाचार सूक्ति काव्य, ओम् योग ध्यान, पद्यानुवाद मञ्जरी (गोमटेश थुदि, भक्तामर स्तोत्र, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, समाधितंत्र, वारसाणुवेक्खा, तत्त्वसार, प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका), मोक्ष प्रदायक काव्य (आत्मोद्धार शतक, सन्मार्ग प्रभावना काव्य, तीर्थंकर स्तुति शतक, सम्यक्ध्यान शतक, श्री अंतादि शतक, गुरु-गुण महिमा काव्य, आशीर्वाद शतक, धर्म भावना शतक, अध्यात्म समयोदय काव्य)

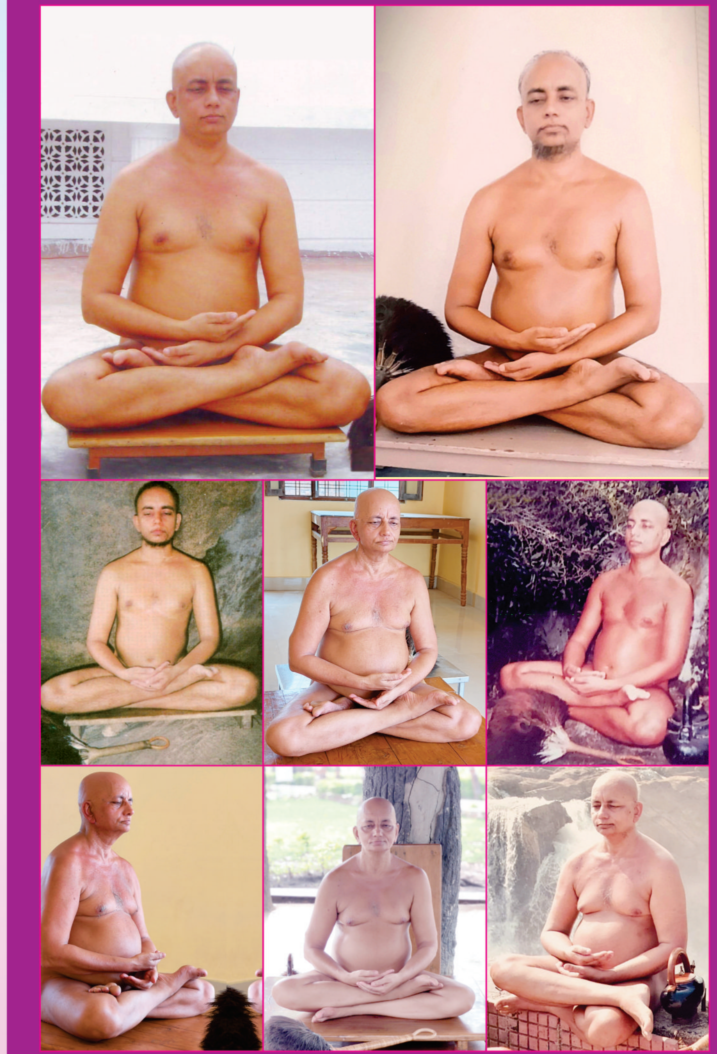

ओम् योग ध्यान

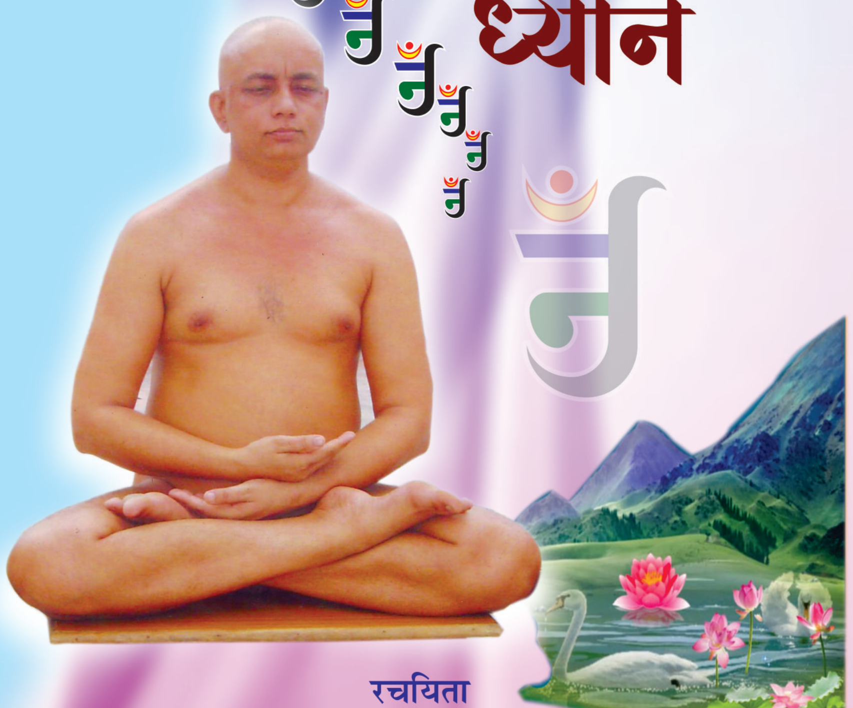

रचयिता

आचार्य श्री आर्जवसागर जी

गुरु शिष्य मिलन का अद्भुत दृश्य
गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की रत्नत्रय कुशलता पूछते हुए आर्जवसागर जी। (सन् 2014)

आचार्यश्री सीमन्धरसागरजी महाराज गुरुवर आर्जवसागर जी के लिए आचार्य पद से अलंकृत करते हुए। (सन् 2015)

ओम्
ॐ
योग-ध्यान

कृतिकार

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज

कृति - ओम् ह्रँ योग-ध्यान

रचयिता - आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

संपादन - बहिन ऋषिका जैन, दमोह
B.E., M.A., Ph.D. (संलग्न)

संस्करण - प्रथम, 2024

प्रतियां - 1000

पावन-संदर्भ - आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज का
11 वां आचार्य पदारोहण दिवस,
माघ शुक्ला षष्ठी अतिशय क्षेत्र चाँदखेड़ी (राज.)

पुण्यार्जक - सकल दिगम्बर जैन समाज पिड़ावा, राजस्थान

प्राप्ति-स्थान - आर्जव-तीर्थ एवं जीव-संरक्षण-ट्रस्ट
4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के
पास बावड़िया कलाँ, भोपाल-462039
मो. : 7049004653, 9425011357,
9425601161, 9425601832

मुद्रक - पारस प्रिन्टर्स (पवन जैन)
207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1,
एम.पी. नगर, भोपाल
फोन : 0755-4260034, 9826240876

विषय सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ क्र.
1.	आमुख (बहिन ऋषिका जैन, दमोह)	*iv*
2.	ॐ योग ध्यान (आचार्य श्री आर्जवसागर जी)	1
3.	ध्यान के आठ कर्त्तव्य	4
4.	ॐ योग ध्यान में साधक 16 योग	6
5.	16 योग, पंचधारणा एवं लाभ	7-30
6.	ध्यान-सामायिक की विधि	31
7.	धारणा-चिंतवन	34
8.	शुभ रूप आत्म-चिंतन	34
9.	ओम् में समाहित पंच परमेष्ठी	36
10.	पंच परमेष्ठी चिंतवन	37
11.	ध्यान-सामायिक के 18 नियम	40
12.	ध्यान-सामायिक भावना	42
13.	ध्यान का प्रयोजन	44
14.	ॐ (ओम्) योग ध्यान की मुद्राएँ	50
15.	पंचपरमेष्ठी की मुद्राएँ	52

आमुख

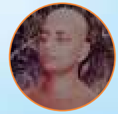

बहिन ऋषिका जैन, दमोह
B.E., M.A., Ph.D. **(संलग्न)**

प्रस्तुत कृति 'ओम् ॐ योग ध्यान' में गुरुदेव आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज द्वारा उपदेशित ओम् योग ध्यान का एक उत्कृष्ट और महान विषय है। आत्मा से परमात्मा तब ही बनते हैं जब कर्मों का क्षय होता है अर्थात् ध्यान रूपी अग्नि से कर्मों का जब नाश होता है।

कर्मों को जलाने के लिये सर्वप्रथम ईंधन की आवश्यकता होती है। कर्म जिसके लिये ईंधन हैं ऐसा शुद्धाग्नि रूप ध्यान जो कर्मों को जलाता है। वह उत्कृष्ट ध्यान अर्थात् शुक्लध्यान पूर्ण परिग्रह त्याग किये बिना नहीं होता, अतः सम्पूर्ण परिग्रह त्याग कर निर्ग्रन्थ बनना आवश्यक है। **''निर्ग्रंथ बने बिना मोक्ष-पद संभव नहीं है।''**

संपूर्ण परिग्रह का त्याग करने के पूर्व परिग्रह का परिमाण करके श्रावक बनना चाहिए। श्रावक बनने से पूर्व सम्यग्दृष्टि बनना चाहिए और उससे पूर्व जैन बनना चाहिए अर्थात् सप्तव्यसन त्यागी, रात्रि भोजन त्यागी, जल छानकर पीने वाला, और जिनदर्शन रूप कुलाचार का पालन करने वाला होना चाहिए।

मोक्ष की प्राप्ति के लिये ध्यान जरूरी है और ध्यान के माध्यम से ही मुक्ति संभव होती है। वैसे तो मोक्ष कोई चीज नहीं है,

न ही कोई स्थान है; बल्कि मोक्ष तो अष्ट कर्मों से मुक्ति का नाम है। या कर्मों से छुटकारा पाना है। कहा भी है-

"कृत्स्न कर्म विप्रमोक्षो मोक्षः"(त.सू.)

अर्थात् संपूर्ण कर्मों से छुटकारे का नाम ही मोक्ष है।

मोक्ष कैसे पायें? मुक्ति (मोक्ष) के लिये ध्यान कैसे करें? चूँकि ध्यान एक अग्नि है; जो कर्मों को जलाती है। कर्मों का पूर्ण नाश तो चौदहवें गुणस्थान में हो जाता है। मोक्ष में ध्यान रूपी अग्नि की आवश्यकता नहीं होती। ध्यान 14 वें गुणस्थान तक ही होता है। गुरुदेव कहते हैं कि- **कर्मों के भार से हल्के होने के लिए ध्यान और ज्ञान से बढ़कर विश्व में और कोई आनंद देने वाली चीज या अवस्था नहीं है।**

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ने अपने सद्विचारों और ध्यान की अनुभूति को '**ओम् योग ध्यान**' के रूप में उपदेशित किया है जिस ध्यान में यम, नियम आदि के साथ सोलह तरह के योगों का पवित्र चिन्तवन हमारे बीच उपस्थित किया है। जिसमें मुद्रा, आसन, धारणाओं के साथ-साथ अनेक प्रकार की भावनाओं का अद्वितीय चिन्तवन हमारे बीच प्रस्तुत किया है जो हमारे ध्यान को गहराई में ले जाकर अपूर्व आनन्द व शान्ति का अनुभव कराता है।

वैसे भी गुरुदेव बहुत वर्षों से ध्यान करते और करवाते रहे हैं तथा महीनों-महीनों तक ध्यान के विषय पर आधारित प्रवचन भी चलते रहते हैं। इसी ध्यान के विषय को गुरुवर ने ग्वालियर में सन्

2008 के वर्षायोग में अपने ध्यान के चिंतन को 113 दोहों में रचकर 'सम्यक् ध्यान शतक' के रूप में हम सबको एक उपहार प्रस्तुत किया है। जिस कृति को भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली के द्वारा भी प्रकाशित किया गया है। उक्त कृति में ध्यान हेतु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के साथ 16 प्रकार के ध्यानों का गुणस्थान परक वर्णन एवं पंच धारणाओं का आगामिक रूप से विवेचन किया है। ऐसी कृति को पढ़कर ध्याता फूले नहीं समाएंगे।

ऐसी 'सम्यक्-ध्यान शतक' कृति पर तथा ध्यान पर आधारित विशेष प्रवचन गुरुदेव के मुखारविंद से Youtube (यूट्यूब) चैनल Aarjav vani (आर्जव वाणी) पर भी देख, सुन सकते हैं, और ध्यान के विशेष प्रवचन लिखित रूप में चाहें तो 'आध्यात्मिक प्रवचन' नामक पुस्तक से भी पढ़ सकते हैं और आध्यात्मिक आनंद से अपने अंतस् को भर सकते हैं।

गुरुदेव द्वारा प्रदत्त 'ओम् योग ध्यान' हमारे मन की एकाग्रता को बढ़ाते हुए तन और मन की स्वस्थता के साथ संसार के कर्म बंधन से मुक्ति को प्राप्त कराते हुए हमें एक दिन मोक्षपद की प्राप्ति रूप लक्ष्य तक अवश्य पहुँचायेगा, अतः हम इस महान उपकार के कर्त्ता गुरुवर आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज के पद कमलों में वंदन नमन समर्पित करते हैं।

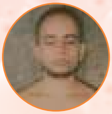

ॐ ओम्-योग-ध्यान

ॐ जिसमें पाँचों परमेष्ठी समाहित हैं, जिसमें द्वादशांग श्रुत ज्ञान भरा हुआ है ऐसा ॐ, और जिसका योग अर्थात् मन-वचन-काय को ॐ में लगाना ही ॐ-योग ध्यान है। ॐ में संपूर्ण लोक-अलोक समाया हुआ है अर्थात् सम्पूर्ण विश्व रूप पूरा ब्रह्माण्ड (सबकुछ) ॐ में समाया है। केवलज्ञान द्वारा पूर्ण लोक-अलोक विलोकित है। केवलज्ञानी अरिहंत भी जब ॐ में गर्भित हैं तो पूरा लोक-अलोक, पूरा विश्व ही ॐ में समाया हुआ समझो।

आत्मा को महान बनाने वाला और आत्मा को परमात्मा बनाने वाला ध्यान बहुत महान है। जिसे 'मेडीटेशन' भी कहते हैं। ध्यान एक ऐसी Medicine है; जो आत्मा और शरीर दोनों को स्वस्थ करती है।

जिस तरह वीतरागता से जुड़े बिना किसी को सम्यक् ध्यान नहीं होता और बिना शुक्ल ध्यान के किसी को अष्ट कर्मों से मोक्ष भी नहीं होता। निर्ग्रन्थ बने बिना किसी को शुक्ल ध्यान नहीं होता। इसलिए मोक्ष प्राप्ति में ध्यान ही बहुत कल्याणकारी साधन है।

इस विश्व में अगर सबसे सर्वश्रेष्ठ वस्तु कोई है तो वह ध्यान है। ध्यान की साधना भी बहुत महान है ध्यान को योग भी कहते हैं। मात्र हाथ पर हाथ रखने से अथवा प्राणायाम करने से ध्यान नहीं होता। जैसे योग करना कठिन है लेकिन सत्योग-सुयोग करना बहुत कठिन है तथा अयोग हो जाना और भी कठिन है। चौदहवें

गुणस्थान में संपूर्ण रूप से प्रवृत्ति बंद हो जाती है और मन-वचन-काय से होने वाला आस्रव पूर्ण रूप से रुक जाता है। तभी मुनीश्वर अयोग कहलाते हैं।

सत् योग रूपी धर्म-ध्यान, सम्यक्-ध्यान रूपी दो शुक्ल ध्यानों में सहायक होता है और इसके माध्यम से यह आत्मा; आत्मा से सकल परमात्मा बन जाती है और सकल परमात्मा फिर अंतिम दो शुक्ल-ध्यानों के माध्यम से अयोगी होते हुए सिद्ध भी बन जाते हैं और वे सिद्ध परमेष्ठी निकल परमात्मा कहलाते हैं। कल अर्थात् जिनका शरीर होता है; जो शरीर सहित हैं वे अर्हन्त सकल परमात्मा हैं और जो शरीर रहित हैं वे सिद्ध परमेष्ठी निकल परमात्मा हैं। तृतीय शुक्ल-ध्यान से अयोग बनते हैं और चतुर्थ शुक्ल-ध्यान से सिद्ध बन जाते हैं। हमें भी अपनी आत्मा की सिद्धि करना है तो ध्यान हेतु मन की एकाग्रता अति-आवश्यक है।

बाहरी मेडिशन तो केवल शरीर की स्वस्थ करती है लेकिन ध्यान रूपी मेडीशन हमारे शरीर के साथ-साथ आत्मा को भी निरोगी बनाकर स्वस्थ कर देती है। इसलिए ध्यान बहुत महान साधना है। इसी ध्यान के माध्यम से हमारे भगवान को केवलज्ञान हुआ और मोक्ष की भी प्राप्ति हुई। बिना ध्यान के मोक्ष नहीं होता है। जहाँ कर्म रूपी ईंधन को ध्यान रूपी अग्नि पूर्ण रूपेण जला दे, वही है मोक्ष।

जैसे दूध को तपाये बिना घृत नहीं बनता। पहले उसे गर्म करना पड़ेगा, जामन डालना पड़ेगा, मथना पड़ेगा फिर नवनीत

आयेगा और फिर उस नवनीत को भी तपाना पड़ेगा तभी घृत आयेगा और घृत की विशेष सुगंधि फूटेगी।

उसी तरह इस आत्मा को भी ध्यान रूपी अग्नि में तपाना पड़ेगा और शरीर-आत्मा भिन्न-भिन्न हैं ऐसा मानकर भेद-विज्ञान का जामन डालना पड़ेगा और निश्चय व्यवहार रूप मथानी की रस्सी से मथना पड़ेगा फिर केवलज्ञान रूप नवनीत आयेगा और फिर उसे भी ध्यानाग्नि में तपाना पड़ेगा तभी मोक्ष या सिद्धावस्था रूप घृत प्राप्त होगा। जैसे एक बार घी बनने के बाद पुनः दूध नहीं बनता वैसे ही एक बार मोक्ष जाने के बाद पुनः सिद्धात्मा को इस संसार में नहीं आना पड़ता। अर्थात् आत्मा इस संसार में पुनः वापस नहीं आती अनंतकाल वह वहीं रहती है। ऐसी महान अवस्था इस ध्यान से ही प्राप्त होती है। इसीलिए कहा है कि- ध्यान एक अग्नि है उसी के माध्यम से यह कर्म रूपी ईंधन जलता है। ध्यान रखना.... निर्ग्रन्थ बनने के बाद ही संपूर्ण ध्यान शुक्लध्यान की प्राप्ति होती है।

''निर्ग्रंथ बने बिना; अपना अन्तिम लक्ष्य; मोक्ष पद संभव नहीं।'' ध्यान; सम्यग्दृष्टि से प्रारंभ हो जाता है और वर्तमान में आजकल लोग ध्यान करते भी हैं। जो सच्चे वीतराग देव-शास्त्र-गुरु का भक्त है। चतुर्थ गुणस्थानधारी है वह धर्म्यध्यान कर सकता है। इसलिए कहा है- ''Meditation on Medicine'' यह मेडीटेशन एक ऐसी मेडिशन है जिसके माध्यम से हजारों रोग व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। आज योग अनेक प्रयोग हो रहे हैं, अनेकों

शिविर लग रहे हैं, उनमें से सबसे सार–प्रद योग है तो वह है 'ओम् ॐ योग ध्यान'।

इसलिए मंगलाचरण में पढ़ते हैं कि–

"ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥"

अर्थात् बिन्दु से सहित जो ओं है वह कैसा है? जिसे योगी लोग हमेशा ध्यान करते हैं और जो पुण्य वर्धक होने से संसार के सभी सुखों को देने वाला है और कर्मों का क्षय होने से मोक्ष भी इसी योग से प्राप्त होता है। इसलिए ओं या ओम् तथा शास्त्रीय भाषा में ॐ का ध्यान बड़े मनोयोग से योगियों द्वारा किया जाता है।

साधु हो या व्रती श्रावक सभी अपने ध्यान या सामायिक प्रारम्भ करते समय ओम् (ॐ) का उच्चारण या ध्वनि किया करते हैं इसी तरह प्रभु दर्शन , प्रभु अभिषेक और प्रवचन (वक्तव्य) के पूर्व भी ओम् नमः सिद्धेभ्यः बोलकर मंगल रूप शुभ क्रिया करते हैं।

ध्यान के 8 कर्त्तव्य

ध्यान के लिये शास्त्रों में वर्णित है कि– ध्यान के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठ अवस्था रूप कर्त्तव्यों की भी आवश्यकता होती है। इसका वर्णन ज्ञानार्णव ग्रन्थ में भी किया गया है।

1.यम- अहिंसादि व्रतों का जीवन पर्यन्त धारण करना यम कहलाता है।

2.नियम- देवापूजादि नियत कालिक षट्-कर्म और नियतकालिक भोगोपभोग- परिमाण का नियमन करना नियम है।

3.आसन- निश्चल और दृढ़ आसन जैसे- पद्मासन, अर्द्धपद्मासन, खड्गासन इत्यादि को आसन माना जाता है। रीढ़ को सीधा करके दृष्टि नाशाग्र की सीध में दूर होनी चाहिए।

4. प्राणायाम- पूरक, कुंभक और रेचक इनके द्वारा वायु के संचार से प्राणायाम किया जाता है।

5. धारणा- चित्त को नाभिमण्डल, हृदय-कमल, ओष्ठ, नासिका, ललाट और सिर आदि में अथवा पंच-धारणाओं का आलम्बन लेकर एकाग्रता में लीन होकर निराकुल अवस्था प्राप्त करना धारणा कहलाती है।

6. प्रत्याहार- भोग-विषयों से चित्त का निरोध हो जाने पर इन्द्रियों को अपने वश में करके जो स्वाधीन अवस्था की प्राप्ति होती है, वह प्रत्याहार कहलाती है।

7. ध्यान- एक ही तत्त्व में स्थिरता पूर्वक जो चिंतवन किया जाता है, उसका नाम ध्यान है।

8. समाधि- जहाँ ध्यान, ध्याता, ध्येय इन विकल्पों से रहित आत्म-तल्लीनता रूप शून्य के समान अर्थ प्रतिभास रूप अवस्था आती है, वह यति की निर्विकल्प समाधि है।

ॐ योग ध्यान में साधक 16 योग

इस ॐ योग ध्यान में शारीरिक सहयोग के द्वारा होने वाली मन–वचन–काय की जो सहायक क्रियाएँ हैं वे भी समीचीन योग रूप ही होती है जैसे–

1. लक्ष्य-योग
2. आसन-योग
3. मुद्रा-योग
4. हस्त-योग
5. श्वास-योग
6. ओंकार-योग
7. मंत्रोच्चारण-योग
8. क्षमा-योग
9. पंच धारणा-योग
10. ध्यान-योग
11. शुभ-भावना-योग
12. निश्चिंत्य-योग
13. आनंद-योग
14. जयकार-योग
15. उष्ण-योग
16. शीत-योग

1. लक्ष्य-योग

इसमें अपने दोनों हाथों को जोड़कर बाएँ से दाएँ (घड़ी के काँटों के समान) तीन बार घुमाएँ एवं दोनों हाथों को जोड़कर ऊपर माथे पर ले जाएँ.... हमें ऊपर जाना है। हमें अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करना है। हमें सिद्ध परमेष्ठी बनना है। इसी भाव का नाम लक्ष्य योग है।

लाभ

1. इससे हमारी एनर्जी (ऊर्जा) ऊर्ध्वगामिनी होती है अर्थात् ऊर्जा का संचार ऊपर लक्ष्य की ओर होता है।

2. हमारा मन प्रशस्त होता है एवं अन्तस् प्रसन्न होता है।

3. सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान होता है। मोक्षमार्ग का सम्मान होता है।

अपने कर को ऊपर लाओ,
लक्ष्य योग में प्रभु को ध्याओ।
ऊर्ध्वगामिनी ऊर्जा मिलती,
शक्ति का संचार कराओ॥

2. आसन-योग

आसन योग को अनेक आसनों के माध्यम से कर सकते हैं। जैसे–• **खड्गासन**– पैरों में चार अंगुल का अंतर करके खड़े होना, भुजाओं को लटकाकर नाशाग्र दृष्टि होना। • **पद्मासन**– दायी जंघा पर बायां पंजा और बायीं जंघा पर दायां पंजा रखकर बायीं हथेली पर दायीं हथेली रखकर रीढ़ को सीधा करके प्रसन्नता पूर्वक बैठना।

• **सुखासन**– सामान्य से जैसे बैठते हैं वह सुखासन है।

• **अर्द्ध पद्मासन**– इसे सिद्धासन भी कहते हैं इसमें एक पैर मोड़कर ऊपर दूसरा पैर मोड़कर नीचे होता है और हथेली पर हथेली रखकर बैठना अर्द्धपद्मासन कहलाता है। • **वीरासन**– इसमें पद्मासन जैसे बैठकर पैरों को जंघाओं पर और ऊपर खींचकर बैठना होता है।

• **वज्रासन**– इसमें नीचे की ओर पैर मोड़कर पैरों को पीछे कर उन पैरों पर सीधा बैठना होता है। इस तरह कई तरह के आसन होते हैं जिनसे ध्यान किया जाता है।

लाभ

1. शरीर में स्थिरता आती है।
2. शरीर स्वस्थता को प्राप्त होता है।
3. मन एकाग्र होता है।

पद्मासन खड्गासन जैसे, सिद्धासन हैं आसन योग।
स्वस्थ करा, स्थिरता लाते, ध्यान में करते नित सहयोग॥

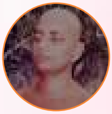

3. मुद्रा-योग

इस योग में आसन लगाने के बाद अपनी रीढ़ को सीधा रखकर नासाग्र दृष्टि में प्रसन्न मुद्रा में बैठना होता है। इस योग में सभी तरह की चिंतायें विकल्पों को छोड़कर प्रसन्नता के साथ ज्ञान-ध्यान रूप चिन्तवन करना मुद्रा योग है।

लाभ

1. इससे आसन विजय होती है।
2. अजीर्णता से छुटकारा मिलता है।
3. शुगर, ब्लड प्रेशर आदि कन्ट्रोल में आ जाते हैं।
5. हार्ट आदि की अनेक बीमारियाँ दूर होती हैं।
6. मन की एकाग्रता बढ़ती है।

प्रसन्न-मुद्रा, नाशा-दृष्टि,
सीधी रीढ़ है मुद्रा-योग।
आसन-विजय-सह ठीक हैं होते,
हार्ट, ब्लड प्रेशर के रोग॥

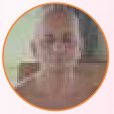

4. हस्त-योग

जिसमें अपने बायें हाथ पर दायाँ हाथ रखकर अंगुलियों पर मंत्र की गिनती का ध्यान किया जाता है उसे हस्त योग कहते हैं।

लाभ

1. इस योग से ऊर्जा का संग्रह होता है।

2. अपने अंदर ध्यान करने की शक्ति प्राप्त होती है।

3. पूरे शरीर में आनंद की अनुभूति प्रवाहित होती है।

बायें हाथ पर दायां रखना,
हस्त योग है कहलाता।
रग-रग में है ऊर्जा का वह,
अद्भुत संग्रह करवाता॥

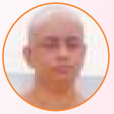

5. श्वास-योग

श्वास योग के अंतर्गत प्राणायाम होता है। जिसमें श्वास पर ध्यान देना होता है अर्थात् पूरक, कुम्भक, रेचक को ध्यान में रखना होता है।

जब पेट फूलता है तो श्वास अंदर जाती है जिसे पूरक कहते हैं। श्वास को पेट में अंदर रखना कुम्भक कहलाता है और श्वास को बाहर निकालना रेचक कहा जाता है। इस योग में णमोकार मंत्र या ओम् का चिंतन करना चाहिए। इस तरह श्वास को ध्यान में रखकर प्रणायाम करना श्वास योग है। जैसे– श्वास जब अन्दर जाती हो तब **णमो अरिहंताणं**, जब बाहर आती हो तब **णमो सिद्धाणं**, फिर जब अन्दर जाती हो तब **णमो आइरियाणं**, फिर बाहर आती हो तब **णमो उवज्झायाणं**, फिर जब अन्दर जाती हो तब **णमो लोए** और जब बाहर आती हो तब **सव्व साहूणं** का ध्यान करना चाहिए।

लाभ

1. प्राणायाम के माध्यम से शरीर स्वस्थ रहता है।
2. शारीरिक शुद्धि होती है।
3. मोटापा की समस्या से छुटकारा मिलता है।
4. मन की एकाग्रता बढ़ती है।

पूरक कुंभक रेचक हैं ये, श्वास योग में सहयोगी।
शुद्धि करते शरीरादि की, प्राणायाम सहित योगी।

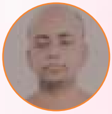

6. ओंकार-योग

ओम् में पञ्च परमेष्ठी गर्भित हैं। ओम्-योग में ओंकार ध्वनि के साथ हमें श्वास को बाहर निकालना है। सर्वप्रथम श्वास को थोड़ा अंदर लेना है फिर थोड़ा अंदर रखकर ॐ की ध्वनि पूर्वक बाहर निकालना है। ओं रूप ही हमारे प्रभु की वाणी खिरती है। यह योग हमें प्रतिदिन करना चाहिए।

लाभ

1. अतीव आनंद की अनुभूति होती है।
2. वातावरण शुद्ध हो जाता है।
3. रोम-रोम पुलकित होकर उत्साह पैदा होता है।
4. धर्मध्यान का प्रारंभिक मंगल होता है।

ओंकार की ध्वनि ध्यान में, ओम् योग में उपयोगी।
रोम-रोम पुलकित हो जाये, मंगलमय निज; हो योगी॥

7. मंत्रोच्चारण-योग

हमारे धर्म में सबसे बड़ा मंत्र सभी मंत्रों का राजा अतिशयकारी णमोकार मंत्र है। जिसे आर्या छन्द में पढ़ा जाता है।

"णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥"

बड़ी ही एकाग्रता से इसे पढ़ें और इसका ध्यान करें।

लाभ

1. इससे कर्मों की निर्जरा होती है।
2. इससे विशेष पुण्यार्जन होता है।
3. इसको करने से बड़े ही उत्तम–सुख की अनुभूति होती है।
4. मन की एकाग्रता बढ़ती है।

★ इसी तरह ध्यानीजन अनेक वीतरागी मंत्रों का जाप करके अपने मन को निर्मल बनाते हैं।

णमोकार के उच्चारण सह, मंत्रोच्चारण योग कहा।
कर्म-निर्जरा पुण्यार्जन वा, अनुभूति होती सुखदा॥

8. क्षमा-योग

संपूर्ण क्रिया करने के प्रारंभ और अंत में हम सब जीवों से क्षमा भाव धारण करेंगे। "**खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे**"। एवं सबसे क्षमा... सबको क्षमा इस तरह बोलें इत्यादि।

क्षमा माँगाना तो सरल है लेकिन क्षमा करना कठिन है। सबसे पहले सब जीवों को क्षमा करो कि मैं अब किसी से बैर नहीं रखूँगा और सामने वाला मुझे क्षमा कर दे। वह क्षमा करे अथवा न करे किन्तु हम अवश्य सब जीवों को क्षमा करते हैं।

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व-भूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि॥

अर्थात् मैं संसार के समस्त प्राणियों के प्रति क्षमा-भाव धारण करता हूँ। समस्त प्राणी भी मुझ पर क्षमा-भाव धारण करें। संसार के सभी जीवों पर मेरा मैत्री भाव है तथा किसी भी जीव के साथ मेरा बैर-विरोध नहीं है।

लाभ

1. कर्मों की निर्जरा होकर पुण्यार्जन होता है।
2. मन निर्मल बनता है।
3. हल्कापन अनुभव में आता है।

क्षमा माँगना, क्षमा भी करना, क्षमायोग का गुण जानो।
हल्कापन-मन निर्मल करता, सच्चा योगी वह मानो॥

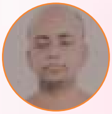

9. पंच धारणा-योग

मुनिजन प्रतिदिन संस्थान विचय धर्मध्यान में पंच धारणाओं का ध्यान करते हैं। अन्य भव्य-गण केवल भावनात्मक चिंतवन कर पंच धारणाओं का अभ्यास कर सकते हैं। दे. सम्यक्ध्यान शतक-

पंच तरह की धारणा, करता ध्यानी होय।
पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और तत्त्व संजोय॥

भावनाओं के रूप में इसका चिंतन करने से यह योग बहुत ही कर्मों की निर्जरा कराने वाला है। पंचधारणाओं में पृथ्वीधारणा, अग्निधारणा, वायुधारणा, जलधारणा और तत्त्वधारणा ग्रहण की जाती है।

1. पृथ्वी धारणा-

मध्य-लोक है क्षीर-सम, सागर शांत स्वरूप।
जम्बूद्वीप सहस्रदल, इक-लख योजन रूप॥
वहाँ कर्णिका-मध्य में, श्वेतासन-शुभ रूप।
जहाँ विराजित आत्मा, बन निर्ग्रंथ स्वरूप॥

2. अग्निधारणा-

निज-नाभि में ऊर्ध्वमुख, स्वर्णिम-दल शुभ-मान।
सोलह-पांखुड़ी स्वर बसें, मध्य बसे र्हं जान॥
अधो-मुखी हिय-मध्य में, कमल विराजित सोह।
अष्ट-पाँखुड़ी कर्म की, दहे ध्यान र्हं होह॥

3.-4. वायु, जल-धारणा-

कर्मराख को तीव्र वह, मारुत करती साफ।
मेघों के उस नीर से, थल भी धुलता आप॥

5. तत्त्वधारणा-

यह शुद्धात्म अजीव से, भिन्न-सिद्ध है जीव।
परम-तत्त्व दर्शन तथा, ज्ञान सहित मम-जीव॥

पंच धारणाओं के चिंतन में लीन गुरुदेव आर्जवसागर जी

पृथ्वीधारणा

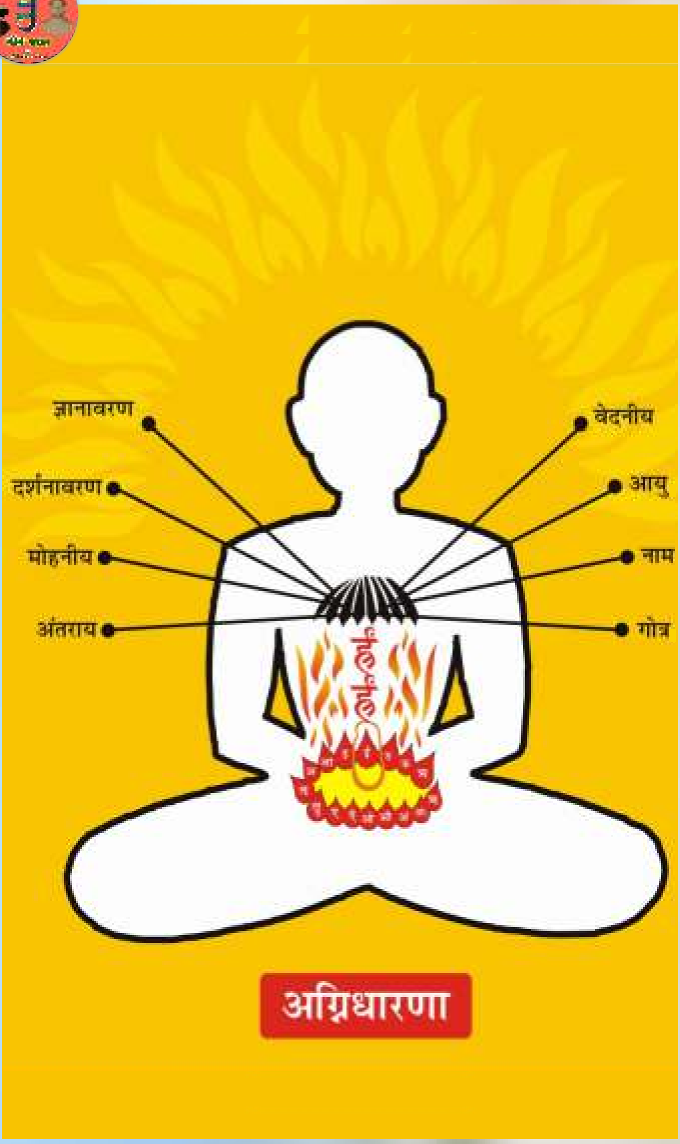
ज्ञानावरण
दर्शनावरण
मोहनीय
अंतराय
वेदनीय
आयु
नाम
गोत्र
अग्निधारणा

वायुधारणा

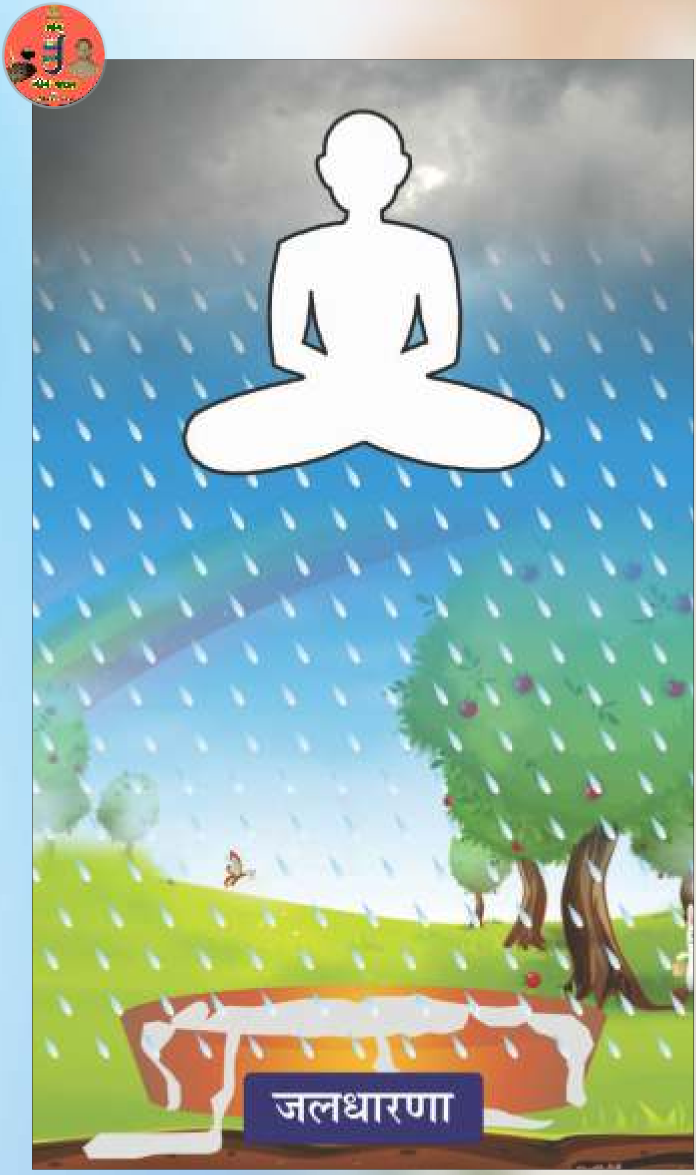
जलधारणा

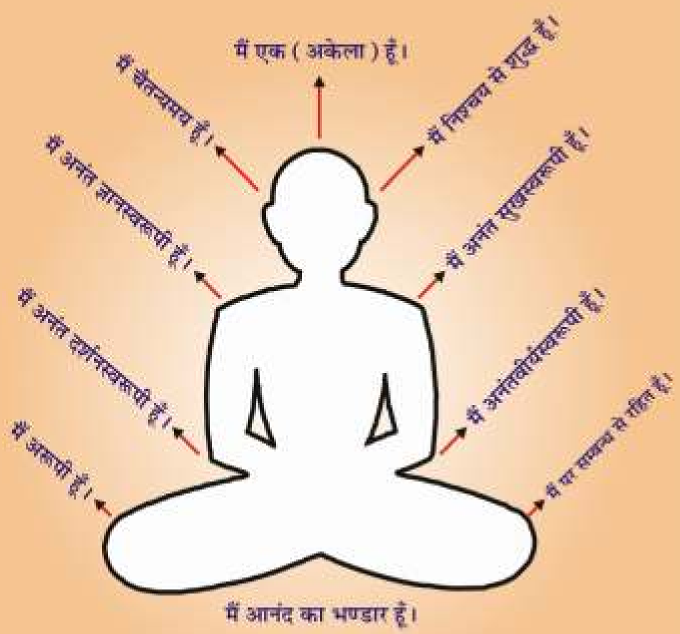
मैं एक (अकेला) हूँ।
मैं चैतन्यमय हूँ।
मैं निश्चय से शुद्ध हूँ।
मैं अनंत ज्ञानस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत सुखस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत दर्शनस्वरूपी हूँ।
मैं अनंतवीर्यस्वरूपी हूँ।
मैं अरूपी हूँ।
मैं पर सम्बन्ध से रहित हूँ।
मैं आनंद का भण्डार हूँ।

तत्त्वधारणा

इन्हीं धारणाओं को और भी विस्तार से समझें और जानें कि–

एक बहुत बड़ा मध्यलोक–सम क्षीरोदधि समुद्र है; उसमें 1 लाख योजन का कमल है और उसकी निन्यानवें हजार चालीस योजन ऊँची चूलिका है उस पर एक धवल पीठ है; जिस पर हम निर्ग्रन्थ बनकर बैठे हैं और हमारी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है। यह हुई पृथ्वीधारणा।

अब अग्निधारणा हेतु चिंतन करें कि कमल की सोलह पांखुड़ियों पर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, रु, रू, लृ, लॄ ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, ऐसे 16 स्वर विराजित हैं और कर्णिका पर र्ह्रं विराजित है; जो कि केवली सर्वज्ञ का वाचक है। और हृदय में 8 पाँखुड़ी का कमल है जिस पर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय ऐसे आठ कर्म स्थित हैं। कर्णिका पर र्ह्रं स्थित है। दोनों र्ह्रं के र् से ध्यान–अग्नि उत्पन्न हो रही है, क्योंकि र् से अग्नि उत्पन्न होती है। हम चिंतन करते हैं कि मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ, ज्ञान–दर्शन स्वभाव वाला हूँ। परमाणु मात्र भी पर पदार्थ मेरा तनिक (कुछ) भी नहीं है। जैसा कि समयसार ग्रन्थ में कहा गया है कि–

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसण णाण मइयो सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किञ्चिवि, अण्णं परमाणु मित्तंपि॥

ऐसा सोचकर जब हम अपनी आत्मा में लीन हो जाते हैं चेष्टा बंद, बोलना बंद और चिंतन भी बंद हो जाता है तो दोनों र्ह्रं से ध्यानाग्नि उत्पन्न हो जाती है और आठों कर्मों को जलाती है तब शरीर भी नष्ट हो जाता है। आत्मा अनंत–ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति वाली अनंत गुणों

से संपन्न होकर और अरूपी होकर सिद्धालय में चली जाती है। यह अग्नि–धारणा कहलाती है।

जो वहाँ ध्यानाग्नि से कर्म–मय सबकुछ जल गया था, तो उस कर्म–राख को जब जोर से वायु आती है तो उसको उड़ा ले जाती है, स्थान साफ हो जाता है। यह वायुधारणा होती है।

मूसलाधार वर्षा होती है और पूरे स्थान को साफ कर देती है तो वहाँ कुछ दाग भी नहीं रहता है। यह जलधारणा होती है।

अंत में तत्त्वधारणा में सोचे कि यह हमारी आत्मा, ज्ञान, दर्शन आदि अनंत गुणों से संपन्न है। ऐसा ध्यान करना तत्त्व धारणा होती है। ये पंच धारणाएँ हुईं।

लाभ

1. इन धारणाओं से मन एकाग्र होता है।
2. भावों में निर्मलता आती है
3. विशेष कर्मों का क्षय होता है।

पृथ्वी, अग्नि, वायु जल वा, तत्त्व पंचधारणा योग।
भाव सुपरिवर्तन सह देखो, ध्यान बढ़े मिले सहयोग।

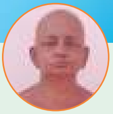

10. ध्यान-योग

ध्यान योग में मंत्र रूप एक योग होता है। जिसमें तत्त्व द्रव्य और णमोकारादि मंत्रों या ॐ, ह्रीं आदि बीजाक्षर रूप वीतराग मंत्रों का मौन पूर्वक गुण व स्वरूप वाचक ध्यान किया जाता है।

तत्त्व एवं मंत्रों द्वारा हम अपने मन को एकाग्र करने में, अपने भावों को शुद्ध बनाने में सक्षम होते हैं।

लाभ

1. कर्मों की निर्जरा होती है।
2. पुण्य का सम्पादन होता है।
3. मन में अपूर्व शांति मिलती है।

ॐ, ह्रीं, श्री, अर्हं आदि,
ध्यान योग में नित ध्याओ।
मन की शांति, कर्म-निर्जरा,
पुण्य खजाना शुभ पाओ॥

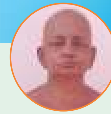

11. शुभ-भावना-योग

शुभ-भावना योग; जिसमें हमें बारह-भावना, साम्य-भावना, षोडस-भावना, परमेष्ठी-भावना, समवसरण-भावना, सम्मेदशिखर-भावना, पंच-परावर्तन, सम्यग्दर्शन-भावना (अष्टअंग), सम्यग्ज्ञान-भावना (चारों अनुयोग), पंचकल्याणक-भावना और पंचतीर्थ-भावना ऐसी शुभ-भावनाओं के चिंतवन आदि रूप भावनायें भानी चाहिए।

लाभ

1. मन एकाग्र होता है।
2. आत्मतृप्ति होती है।
3. आत्म-विशुद्धि बढ़ती है।
4. आत्मा में अपूर्व आनंद की अनुभूति होती है।

सामायिक में निज का चिंतन,
रहा शुभ भावना योग।
आत्म-विशुद्धि में वृद्धि व,
आतम-तृप्ति में सहयोग॥

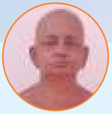

12. निश्चिंत्य-योग

जब उक्त सभी ध्यान हो जाते हैं तब बड़े ही आनंद के साथ अपने दोनों हाथों को ललाट पर लगाते हैं। तब निश्चिंतता आती है, सभी प्रकार की चिंताओं से मुक्त होने रूप निश्चिंत्य योग होता है।

लाभ

1. शरीर में ताजगी आती है।
2. सुख की अनुभूति होती है।
3. जीवन चिंताओं से मुक्त होता है।

अपने माथे व आँखों पर,
कर को रखना निश्चिंत योग।
सुख की अनुभूति भी होती,
सदा ताजगी हो चहुँ ओर॥

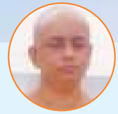

13. आनंद-योग

ऐसे ॐ योग ध्यान को करने से बहुत आनंद होता है। जिसमें स्वतः ही तालियाँ बजने लगती हैं। करतल ध्वनि होती है। इसे ही आनंद योग कहते हैं।

लाभ

1. इससे अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है।
2. पुण्य-वृद्धि भी होती है।
3. ब्लड स्तर में भी वृद्धि होती है।

योग अंत में करतल ध्वनि है,
आनंद योग का रूप कहा।
आनंद की अनुभूति अद्भुत,
पुण्यवृद्धि का भूप कहा॥

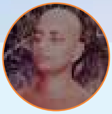

14. जयकार-योग

हमें नँ ध्यान योग करने से बहुत आनंद आता है। वह किसकी वजह से आता है? तो जिन वीतराग प्रभु की छवि से उनकी वाणी से हमें आनंद आया है। उन्हीं प्रभु या गुरु की सामूहिक रूप से एक बार बहुत जोर से जयकार लगाते हैं। जिसे जयकार योग कहते हैं।

लाभ

1. हमारे कण्ठ की शुद्धि होती है।
2. धर्म की प्रभावना होती है।
3. हमारा जिन–शासन जयवन्त रहता है।

जय–जय की ध्वनि, उच्च स्वरों में,
कहो जय–जयकार सुयोग।
कण्ठ–शुद्धि–सह धर्म–प्रभावन,
दूर होंय शारीरिक रोग॥

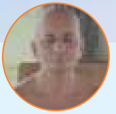

15. उष्ण-योग

शीतकाल में गुप्तासन लगाकर अर्थात् अर्द्धपद्मासन में पैरों की अंगुलियों को पैरों के अंदर गुप्त कर और हाथों की हथेलियों को आपस में रगड़कर पेट से सटाकर बैठने से उष्णता आती है और शीतलता कम हो जाती है।

लाभ

1. शरीर में उष्णता प्राप्त होती है।
2. मन एकाग्र होता है।
3. ध्यान सहज होता है।

उष्ण-योग में गुप्तासन हो,
ऊर्जा का संचार रहा।
ध्यान बढ़े फिर कर्म-निर्जरा,
शांति का शुभ मार्ग कहा॥

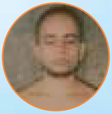

16. शीत-योग

ग्रीष्मकाल में शारीरिक उष्णता बढ़ने पर खड़े हो जाना या पद्मासन, अर्द्धपद्मासन या सिद्धासन लगाकर ज्ञान-मुद्रा में हाथों को घुटने के ऊपर रखकर जीभ से वायु को अंदर ग्रहण करने से शीतली प्राणायाम द्वारा शीतलता आ जाती है।

लाभ

1. शारीरिक उष्णता कम होती है।
2. तरावट व शक्ति प्राप्त होती है।
3. ध्यान एकाग्र होता है।

शीतयोग में वायु ग्रहण कर,
ज्ञान मुद्रा साथ रहे।
रहे शीतली प्राणायामी,
प्रशस्त ध्यान ही आप वरे॥

ध्यान-सामायिक की विधि

ध्यान में होने वाले शुभ व शुद्ध रूप साम्य या समता-मय परिणामों को सामायिक नाम से भी पुकारा जाता है। सामायिक का लक्षण पूर्वाचार्यों ने एक संस्कृत-श्लोक के माध्यम से इस तरह बतलाया है कि-

समता सर्व भूतेषु संयमे शुभ-भावना।
आर्त्त रौद्र परित्यागस्तद्धि सामायिकं मतम् ।।

अर्थात् सब जीवों में समता-भाव रखना, संयम-पालन में, शुभ-भावना भाना (पच्चीस, सोलह, बारह आदि) और आर्त्त-रौद्र ध्यानों का परित्याग करना, इसे सामायिक माना गया है।

1. सामायिक हेतु स्थान एकांत हो, जहाँ पर परिवार की या अन्य लोगों की आवाज न पहुँचती हो, भीड़-भाड़ के स्थान को छोड़कर मंदिर या घर की छत आदि स्थान पर एकांत में सामायिक करें।
2. सामायिक में स्थान आदिक की शुद्धता और स्वच्छता का ध्यान रखें। गहरी श्वास को अंदर खींच कर श्वास छोड़ते हुये ओंकार ध्वनि से मन को शुद्ध करें।
3. सामायिक के समय श्रावकों के शरीर पर कम वस्त्र हों। जिस शय्या पर शयन किया है, उसको छोड़कर पवित्र स्थान में चटाई या लकड़ी के पाटे पर सामायिक को सम्पन्न करें।

4. निराकुल चित्त से – पूर्व दिशा की ओर मुखकर खड़े हो जायें । अञ्जलिबद्ध हाथ जोड़ें, अञ्जलि को मस्तक तक लें जायें और तीन आवर्तों के साथ एक शिरोनति (सिर झुकाने की क्रिया शिरोनति कहलाती है) के साथ बैठकर तीन बार नमोस्तु बोलें। इसके बाद तीन बार "ॐ नमः सिद्धेभ्यः" बोलें, रीढ़ की हड्डी को सीधी करें, दोनों भुजाएँ लटकायें, और दोनों पाँवों की दोनों एड़ियों में चार अँगुल का और पैरों के दोनों अंगूठों में बारह अँगुल का अन्तर हो। शिर सीधा, नाशाग्र दृष्टि, इसके बाद नौ बार महामंत्र का जाप, मध्यम स्वर में 27 श्वासोच्छ्वास के साथ हो। एक बार मंत्र का उच्चारण तीन श्वासोच्छ्वास में करें–

5. ध्यान रहे कि – श्वास के भीतर जाते समय "णमो अरिहंताणं" चिन्तन करें। श्वास के बाहर आते हुए "णमो सिद्धाणं" का चिन्तन करें पुनः दूसरी श्वास को लेते हुए "णमो आइरियाणं" का चिन्तन करें तथा श्वास लौटाते हुये "णमो उवज्झायाणं" का चिन्तन करें फिर तीसरी श्वास लेते हुए "णमो लोए" का चिन्तन करें तथा छोड़ते हुए " सव्व साहूणं" का चिन्तन करें। इस प्रकार एक बार में तीन श्वासोच्छ्वास और नौ बार पढ़ने पर सत्ताईस श्वासोच्छ्वास होंगे।

6. पूर्व दिशा में–नौ बार णमोकार मन्त्र जप कर नमस्कार करके पूर्व दिशा और आग्नेय विदिशा में स्थित अरहन्त, सिद्ध,

केवली, जिन, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय हैं मैं उनकी वन्दना करता हूँ। इस प्रकार पूर्व दिशा संबंधी कृति कर्म सम्पन्न करके अन्य दिशाओं में भी इसी प्रकार की क्रिया करें।

प्रतिज्ञा करें – "अथ पौर्वाह्निक/ मध्याह्निक/ अपराह्निक काले घटिका द्वय- पर्यंता सर्वसावद्ययोगात् विरतोऽस्मि" अर्थात् अब मैं सुबह, मध्याह्न या सांयकाल में दो घटिकाओं पर्यन्त सामायिक काल में सम्पूर्ण पापों का त्याग करता हूँ । इतना कह चुकने के बाद ही पूर्व दिशा या उत्तर दिशा में मुंह करके सुस्थिर खड़े हो कर, या पद्मासन अथवा अर्द्ध पद्मासन में बैठ जायें, फिर किसी धर्म विषय को लेकर चिंतन करें – जैसे –

मेरा परिचय कैसा है यह, चिंतन करते हैं सुधिजन ।
मैं हूँ कौन? व किन गुणवाला, किस गति से आया भविजन ।।
किसको पाना? कैसे पाना? लक्ष्य हमारा क्या सज्जन।
अगर भूलते इन सबको जो, भटकें भव-वन में जग-जन ।।

★★★

मैं हूँ आतम चेतन वाला, दर्शन ज्ञान गुणी भविजन ।
भवसागर में भटका आया, घोर महादुख सहा सुजन ।।
मोक्ष लाभ हो लक्ष्य हमारा, रत्नत्रय से मिले परम।
अतः सरागी मोह जाल तज, व्रत, संयम, तप करें धरम ।।

– तीर्थोदय काव्य

धारणा-चिंतवन

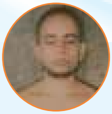

- यह मध्य लोक क्षीरोदधि के समान है।
- क्षीरोदधि में एक लाख योजन का कमल है।
- कमल की एक लाख चालीस योजन की चूलिका है।
- चूलिका पर एक धवल पीठासन है।
- उस पीठासन पर मैं मुनि बनकर बैठा हूँ।

शुभ रूप आत्म-चिंतवन

- मैं एक चैतन्य-आत्मा हूँ।
- मैं ज्ञान, दर्शन स्वरूपी हूँ।
- कर्मों ने मुझे संसार रूपी कारागृह में फँसा रखा है।
- मेरा पावन लक्ष्य मोक्ष है।
- मोक्ष की प्राप्ति रत्नत्रय और ध्यान से होती है।
- इस जगत् में मेरा धर्म ही एक शरण है।
- जग में इन्द्रिय-विषय सभी अशुभ हैं।
- संसार का कोई भी पदार्थ शाश्वत् नहीं है।
- संसार में सब जगह स्वार्थ और दुःख ही नजर आता है।
- दिखने वाले सभी पदार्थ आत्म रूप नहीं हैं।
- जो दिखता है वह जड़ पदार्थ अपना नहीं है।
- जो अपना आत्मा है वह दिखता नहीं है।

- हमारी आत्मा सदा शाश्वत है।
- मोक्ष–अवस्था नित शुभ रूप है।
- सिद्ध–अवस्था ही सच्चे परम–सुख का स्थान है।
- मोक्ष सदा ही अनंत ज्ञानादि–मय परमात्म अवस्था है।
- मैं निश्चय से शुद्धात्म रूप हूँ।
- परमाणु मात्र भी पर–पदार्थ मेरा नहीं है।
- मैं पर पदार्थ से राग–द्वेष और मोह को छोड़ता हूँ।
- मैं पूर्ण–विश्व के पदार्थों में समता–भाव धारण करता हूँ।
- मैं इन्द्रियों को पापों से बचकर संयम धारण करता हूँ।
- मैं आर्त्त, रौद्र ध्यानों का त्याग करता हूँ।
- मैं शुभ–भावनाओं को अपने चिंतन में लाता हूँ।
- मैं परमात्मा के स्वरूप का चिन्तवन करता हूँ।
- मैं शुभ–ध्यान में पंच–परमेष्ठी के स्वरूप का चिन्तवन करता हूँ।

सामायिक / ध्यान में लीन आचार्यश्री आर्जवसागर जी

ओम् में समाहित पंच परमेष्ठी

पंच परमेष्ठी ओम् में किस तरह समाहित हैं–

- ओं (ओम्) इस मंगलाक्षर में पंच परमेष्ठी इस तरह समाहित हैं-

अरहंता अशरीरा आइरिया तह उवज्झाया मुणिणो।
पढमक्खर णिप्पण्णो ओंकारो पञ्च परमेट्ठी॥

अर्थात् अरहंत, अशरीरी (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय एवं मुनि के प्रथम अक्षरों से पंच परमेष्ठी का वाचक ओंकार निष्पन्न हुआ है। 'ओं' यह मंगलाक्षर, व्याकरण के अनुसार संधि होकर सिद्ध हुआ है जिसमें प्रथम अक्षरों के रूप में

अरिहंत परमेष्ठी का	– अ	
सिद्ध (अशरीरी) परमेष्ठी का	–अ	
आचार्य परमेष्ठी का	–आ	अ+अ+आ+उ+म्=ओम् (ओं)
उपाध्याय परमेष्ठी का	–उ	
साधु (मुनि) परमेष्ठी का	–म्	

ऊपर जो ऐसे प्रथम-प्रथम अक्षर लिए गए हैं, जैनाचार्य रचित '**कातन्त्रव्याकरण**' के 24वें सूत्र- '**समान: सवर्णे दीर्घी भवति परश्चलोपम्**' के अनुसार समान संज्ञक वर्ण, उसी समान वर्ण के सामने आने पर दीर्घ हो जाता है। यहाँ अरहंत का प्रथम अक्षर 'अ' इस समान संज्ञक वर्ण के सामने अशरीरी एवं आचार्य के प्रथम अक्षर 'अ', 'आ' के आने से वह दीर्घ हो गया और बाद वाले 'अ' 'आ' का लोप हो गया, और 'आ' यह रूप रहा अब इसके सामने उपाध्याय का 'उ' एवं मुनि का 'म्' अक्षर है, इनमें भी कातन्त्र व्याकरण का 30 वाँ

''**उवर्णे ओ**'' सूत्र लगता है जिसका अर्थ है कि – अवर्ण के सामने 'उ' वर्ण आने पर अवर्ण का 'ओ' हो जाता है और पर अर्थात् 'उ' वर्ण का लोप हो जाता है। इसलिए 'आ' वर्ण का 'ओ' हो गया और 'उ' वर्ण का लोप हो गया अब 'ओ' के सामने केवल 'म्' रहा। 'ओ' एवं 'म्' दोनों की संधि कर देने पर 'ओम्' बना तथा कातन्त्र व्याकरण के 92वें सूत्र '**विरामे वा**' से ओम् के 'म्' का अनुस्वार हो गया तब पञ्च परमेष्ठी का वाचक ओं यह मंगलाक्षर सिद्ध हो गया। जिसे बीजाक्षर के रूप में 'ॐ' ऐसा लिखा जाता है। ऐसे ओं ॐ का ध्यान करना '**ओं ॐ योग ध्यान**' है।

पंच परमेष्ठी-चिंतवन

पंच परमेष्ठी के नमस्कार–मंत्र में ध्याये जाने वाले अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु का स्वरूप–

मूलाचार शास्त्र में कहा है–

अरहंता णमोक्कारं, भावेण य जो करेदी पयदमदी।
सो सव्व दुक्ख मोक्खं, पावदि अचिरेण कालेण॥ 506॥

जो प्रत्यत्नवान जीव भाव पूर्वक अरहंत को नमस्कार करता है, वह अतिशीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।

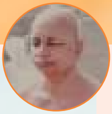

अरिहंत परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठ-चदुघाइकम्मो, दंसण-सुह-णाण-वीरिय-मईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो॥

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

णट्-ठट्ठ-कम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो॥

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणपहाणे, वीरिय-चारित्त-वरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी झेओ॥

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स॥

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणसमग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स॥

–द्रव्यसंग्रह

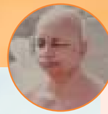

अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप

नष्ट हुए हैं घातिकर्म जहँ, दर्श ज्ञान सुख शक्ति मिली।
अनन्त चतुष्टय प्राप्त किया व, केवल ज्योति जिन्हें जगी॥
शुभ व परम औदारिक तन में, थित हैं शुद्ध परम आतम।
हैं अरिहंत जगत् परमेष्ठी, ध्यान योग्य हैं जो आतम॥

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

अष्ट कर्म तन नष्ट हुये हैं, लोकालोकी शुद्धातम।
जिस नर तन से शिव को पाया, पुरुषाकारी वह आतम॥
सिद्ध परम परमेष्ठी ऊपर, लोक शिखर पर सदा रहें।
करो ध्यान हो कर्म निर्जरा, फिर गम देखो कहाँ रहे॥

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

दर्शन ज्ञान प्रधान धारते, वीर्य चरित व तप आचार।
जिसमें रत हो स्वयं तथाहि, करवाते सबको आचार॥
ऐसे हैं आचार्य-मुनि वे, परमेष्ठी का रूप धरें।
करें ध्यान हम सदा योग्य उन, गुरुवर सम हि रूप वरें॥

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो रत्नत्रय युक्त रहें नित, धर्म उपदेश करें जन को।
वे मुनियों में उत्तम प्यारे, उपदेशक भाते जन को॥
उपाध्याय उन परमेष्ठी को, नमन सभी का पूर्ण रहे।
ज्ञान गहें सब चारित पालें, मिले हि सुख संपूर्ण रहे॥

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

जो नित, बिन रागादि विशुद्ध, मोक्षमार्ग अनुकूल सदा।
दर्श ज्ञान से पूर्ण चरित को, साधें उत्तम सुखद मुदा॥
वे मुनि साधु परमेष्ठी हैं, उनको नमन हमारा है।
कर्मनाश हों शिवपथ चलकर, भव का मिले किनारा है॥

ध्यान-सामायिक के 18 नियम अवश्य ध्यान दें-

1. सामायिक में आधे नेत्र खुले होना चाहिए, पूर्ण बंद नहीं करना चाहिए।

2. शरीर में ममत्व छोड़कर के बाधाओं उपसर्गों को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए।

3. पापों को छोड़कर, आकुलता रहित, शांत-परिणामों में सामायिक करना चाहिए।

4. व्यापार, घर, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, सम्बन्धी आकुलता एवं प्रमाद को छोड़कर शांत-चित्त से उत्साह, विनय-पूर्वक सामायिक करना चाहिए।

5. सामायिक; मन को स्थिर करके एकाग्र दृष्टि से ''नाशाग्र दृष्टि'' से करना चाहिए।

6. एकाग्रता के लिये - पंच परमेष्ठी के गुणों का, स्तोत्र आदि में वर्णित विषय का और रत्नकरण्डक, छहढाला, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश आदि ग्रन्थों में वर्णित ध्यान-सामायिक के विषय का चिन्तन करना चाहिए।

7. मन की स्थिरता के लिये तीर्थंकरों व सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्रों का चिन्तन करें।

8. कर्मों के स्वभाव, बंध, उदय, क्षय तथा गुणस्थान आदि का चिन्तवन करना चाहिए।

9. विघ्न आदिक के आने पर भी आसन और उपयोग को नहीं बदलना चाहिए।

10. सामायिक में आलस्य, निद्रादिक दोषों को टाल कर सामायिक करनी चाहिए।

11. सामायिक प्रारंभ करने के पहले मल मूत्र की बाधा से रहित हो जाना चाहिए।

12. शरीर (हाथ पैरादिक) को शुद्ध करके सामायिक करनी चाहिए।

13. सामायिक में धोती, दुपट्टा आदि शुद्ध पहनना चाहिए। (विशेष परिस्थिति या मुनि-सम अवस्था में विधि अलग है।)

14. सामायिक में दृढ़ आसन रखें, एक ही आसन से बैठने का अभ्यास करें।

15. मनः-शुद्धि-मन में पञ्चपरमेष्ठी जिनवाणी (जिनवचनों) का उच्चारण करें।

16. वचन-शुद्धि - धर्म-पाठ के सिवाय दूसरा कोई भी शब्द उच्चारण न करें।

17. द्वात्रिंशतिका या सामायिक भावना आदि का पाठ मीठे स्वर से धीरे-धीरे उच्चारण करें, शीघ्रता से पाठ को न बोलें और हुँकार, खाँसी, खोखों आदि नहीं करना चाहिए।

18. विनय पूर्वक- शास्त्र या जिनवाणी को ऊपर रखकर, आसन को, बैठने के स्थान को परिमार्जन कर सामायिक शुरु करना चाहिए। सामायिक के अंत में भी पूर्ववत् कायोत्सर्ग व आवर्त आदि विधि कर सामायिक पूर्ण करें।

ध्यान-सामायिक भावना

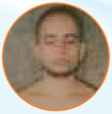

1. सब जीवों को हो क्षमा, क्षमा करें सब जीव ।
गुणियों के प्रति प्रेम हो, करुणा वहे सजीव ।।

2. दुर्जन में माध्यस्थ हो, भव से भय हि अतीव ।
जिनवर ऐसी भावना, भायें हम सब जीव ।।

3. अनन्त-बल निज में कहा, प्रगट ध्यान से होय।
सुख-दुख में समता धरें, उत्तम-सौख्य सुजोय।।

4. जिनवर-पद मम हृदय में, बसें नित्य शुभ-ध्यान ।
जीव-बचा चर्या रहे, बचें सभी के प्राण ।।

5. शिव-मग के अनुकूल सब, चलें सभी हम लोग ।
स्वेच्छाचारी-पन तजें, ना हों दुर्गति, रोग ।।

6. जिनवाणी की हो विनय, करें भक्ति सम्मान ।
शुद्ध-पाठ से शांत यह, मन बनता धीमान ।।

7. रत्नत्रय का लाभ हो, आत्म-लीन परिणाम ।
चिन्तामणि-सम सौख्य दे, आगम तुम्हें प्रणाम ।।

8. पाप-रहित परमात्मा, व्यसन, काम से दूर ।
राग, द्वेष सब तज दिये, करें भक्ति भरपूर ।।

9. वीतराग-जिन शरण में, सर्व कर्म कट जायँ ।
मोक्ष-सुपद का लाभ हो, समता दल खिल जायँ ।।

10. बहिर्-द्रव्य आसन तथा, पूजा वा सम्मान ।
आत्मलीनता में कभी, उपयोगी ना जान ।।

11. शरीर, भोग, परिजन सभी, मेरे ना, मम रूप ।
मैं न उनका कदापि हूँ, स्वस्थ रहा निजरूप ।।

12. ज्ञान शुद्ध दर्शन तथा, चरित रूप परिणाम ।
आत्म-समाधि में सदा, ध्यावें साधु महान ।।

13. एकाकी निज-आत्मा, शाश्वत, निर्मल पूर्ण ।
पर-पदार्थ जड़ रूप हैं, नश्वर-भव सम्पूर्ण ।।

14. सामायिक में साम्य हो, संयम-भावन रूप ।
आर्त्त-रौद्र न ध्यान हों, ध्यावें शुद्ध-सुरूप ।।

15. संयोगज सब द्रव्य ये, वियोग सहहि अनित्य ।
चिन्ता, पीड़ा दें सदा, ध्यावें निज-गुण नित्य ।।

16. सांसारिक उलझन सदा, भव-विकल्प से पूर्ण ।
पर-चिंता को छोड़ दें, निज-सुख है सम्पूर्ण ।।

17. स्वयं किये सब कर्म वे, सुख-दुख दें यह ज्ञान ।
पर दें सुख-दुख जो कहें, रहे मूढ़ अन्जान ।।

18. चिंतन हो अध्यात्म का, बैर, अरति ना होय ।
किंचित भी न फल कभी - अन्य दे बुद्धि खोय ।।

19. परमातम की भक्ति से, पाप-बंध कट जायँ ।
पुण्य-बंध से सुख मिले, सुगति भव्य वे पायँ ।।

20. तप करते जब साधु वे, कर्म सभी गल जायँ ।
उत्तम-फल वह मोक्ष सुख-मिले सुगुण जग भायँ ।।

21. सम-दर्शन व ज्ञान, व्रत, मोक्ष-निमित्त महान ।
उपादान निज आत्मा, मग पुरुषार्थ प्रधान ।।

22. साम्य-रूप ये भावना, पढ़ें पद्य इक्कीस ।
'आर्जवता' से शुभ लहें, अर्हद्-पद शिव ईश ।।

★★★

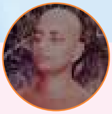

ध्यान का प्रयोजन

'ध्ये चिंतायाम्' धातु से ध्यान शब्द निष्पन्न होता है। जो चिंतवन, मनन करने के अर्थ में है। तत्त्वार्थसूत्र में एकाग्र चिंता निरोध के सूत्र में एक का अर्थ केवल अर्थात् आत्मा और अग्र पद का अर्थ मुख है जो एक अग्र होता है वह एकाग्र है। निरोध का अर्थ नियंत्रण या रोकना कहलाता है। अन्य पदार्थ में अमुख अर्थात् हटकर या निर्वृत्त होकर एक आत्म पदार्थ में चिंतवन का स्थिर रहना सम्यक्-ध्यान कहलाता है।

शुक्लध्यान रूपी उत्कृष्ट ध्यान की अपेक्षा अग्र का अर्थ प्रथम या मुख्य होता है। जिससे ध्याता को सभी पदार्थों में अपनी आत्मा ही मुख्य होती है और तत्त्वों में अग्रण्य होने से भी अग्र शब्द से आत्मा का स्मरण किया गया है। तो केवल आत्मा के ध्यान में चित्त-वृत्ति का नियंत्रण होना उत्तम-ध्यान है।

संसार में जीव कर्म से बध्य होकर अनादिकाल से चतुर्गति-परिभ्रमण कर रहा है। वह जीव जब वीतरागी देवाधिदेव अरिहन्त भगवान, निर्ग्रंथ-गुरु और समीचीन शास्त्र को निमित्त बनाकर इन पर अगाढ़ भक्ति धारण कर और इनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर अटूट श्रद्धा धारण कर आत्मा के सच्चे स्वरूप को पहचान कर उसकी श्रद्धा करके निर्ग्रन्थ बन उसी में लीन होता है तो संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

मुक्ति के साधन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जीव में अजीव रूप कर्म का आना आस्रव है और कर्म का जीव के साथ बँध जाना बंध है। ये आश्रव, बन्ध ही संसार के प्रधान कारण हैं और संसार के अभाव रूप मोक्ष के प्रधान कारण संवर और निर्जरा हैं। कर्मों के रुकने रूप संवर और कर्मों के क्षय होने रूप निर्जरा को प्रधान कारण

सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र हैं और सम्यक्‌चारित्र में तप भी गर्भित है और तप बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। अभ्यन्तर तप के भेदों में एक भेद ध्यान है। तत्त्वार्थ सूत्र में **'आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि'** सूत्र के द्वारा ध्यान चार प्रकार का बतलाया गया है। अगले सूत्र में **'परे मोक्ष हेतु'** अर्थात् बाद वाले धर्म, और शुक्ल ध्यान मोक्ष के कारण हैं। एतदर्थ पारिशेष न्याय से **'पूर्वे संसार हेतु'** अर्थात् पूर्व कथित जो आर्त्त, रौद्र ध्यान हैं वे संसार के कारण हैं स्वयमेव सिद्ध हो जाता है। इसी कथन से यह भी अर्थ स्पष्ट होता है कि जो साक्षात् और परम्परा से क्रमशः मोक्ष के कारण रूप धर्म और शुक्लध्यान हैं वे शुभ रूप ध्यान हैं और संसार के कारण रूप जो आर्त्त, रौद्र ध्यान हैं वे अशुभ रूप ध्यान हैं। यदि कदाचित् कोई भव्य कहे कि मुझे ध्यान का अभ्यास करना है; तो कहा जावेगा कि संसार के प्रत्येक प्राणी को अशुभ ध्यानों का अभ्यास तो अनादिकाल से चल ही रहा है, परन्तु शुभ-ध्यानों के लिए विशिष्ट पुरुषार्थ रूप सम्यग्दर्शन पूर्वक ज्ञान, चारित्र अथवा संवर, निर्जरा के साधन रूप गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह-जय और चारित्र की अनिवार्यता होती है।

परिग्रहवान मोही संसार के सर्व प्राणी चिंताओं में उलझे हुये हैं। जिनके हिय में आकुलता-व्याकुलतामय परिणामों से आर्त्त, रौद्र ध्यानों की निरन्तरता बनी रहती है और जब तक तत्त्व-चिंतन के साथ धर्मध्यान नहीं होता तब तक चित्त-वृत्ति के निरोध के साथ समीचीन अर्थात् सम्यक्‌ध्यान सम्भव नहीं है। समाधि-तन्त्र में कहा है कि-जिस ध्यानी साधक का मन रूपी जल राग-द्वेष आदि लहरों से चंचल (चलायमान) नहीं होता वही आत्मा के यथार्थ स्वरूप को देखता है। अन्य जन उस आत्म-तत्त्व का दर्श नहीं कर सकते।

रागद्वेषादि कल्लोलै, रलौलं यन्मनो जलं।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत्तत्त्वं नेतरो जनः ॥ 35 ॥

– समाधितन्त्र

कितने ही दार्शनिक यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठों को योग का अंग मानते हैं जिनका समीचीन अर्थ पूर्व में कर ही चुकें हैं और कोई दार्शनिक यम, नियम को छोड़कर मात्र छह को योग का अंग मानते हैं। शुभचन्द्राचार्य ने कहा है कि उत्साह, निश्चय, धैर्य, संतोष, तत्त्व-निर्णय और जनपद त्याग इन छः से मुनि को योगों की सिद्धि होती है। और भी कहा है कि गुरु -उपदेश, उपदेश पर भक्ति, दृढ़ श्रद्धा, तत्त्व चिंतन और मन की स्थिरता ये सम्यक्-ध्यान के पंच प्रधान साधन हैं।

जैन-दर्शन में जिसे निर्ग्रन्थों के जीवन में निर्विकल्प-समाधि कहा जाता है। जिसे शुद्धोपयोग की उत्कृष्ट अवस्था में शुक्ल-ध्यान रूप से इंगित किया जाता है।

विद्वानों ने धर्म-ध्यान के पश्चात् प्राणायाम की व्याख्या करते हुए प्रथमतः यह निर्देशित किया गया है कि अपने सिद्धान्त का भले प्रकार निर्णय कर लेने वाले मुनियों ने ध्यान की सिद्धि के निमित्त मन की स्थिरता के लिए प्राणायाम की प्रशंसा की है। इसलिए बुद्धिमान भव्य जनों को उसे प्राप्त करना चाहिए क्योंकि इसके बिना मन पर विजय प्राप्त करना शक्य नहीं है। आचार्यों ने प्रत्याहार के लिए समाधि सिद्धि हेतु नियामक रूप से प्रशंसनीय बतलाया है। ज्ञानार्णव शास्त्र में शुभचन्द्राचार्य कहते हैं कि -

निःसंगः संवृतस्वान्तः कूर्मवृत्संवृतेन्द्रियः।
यमी समत्वमापन्नो ध्यानतन्त्रे स्थिरी भवेत्॥ 1457॥

अर्थात् जो मुनि परिग्रह से निर्ममत्व हो चुका है जिसका मन सावद्य प्रवृत्ति से रहित है। तथा जिसकी इन्द्रियाँ कछुए-सम संकुचित हैं व स्वाधीन हो चुकी हैं वह समता-भाव को प्राप्त होता हुआ ध्यान की सिद्धि में दृढ़ होता है। तदुपरान्त प्रत्याहार की महिमा प्राप्त आत्मा के लिए प्राणायाम की

आवश्यकता नहीं क्योंकि प्राणायाम से अपने प्राण या शरीर बाधित होते हैं।

सम्यक् समाधि सिद्धयर्थं, प्रत्याहार: प्रशस्यते।
प्राणायामेन विक्षिप्तं मन: स्वास्थ्यं न विन्दति ॥ 1459 ॥
पूरणे, कुम्भने चैव तथा श्ववसननिर्गमे।
व्याग्रीभवन्ति चेतोसि क्लिश्यमानानि वायुभि: ॥ 1465 ॥

– ज्ञानार्णव

अर्थात् प्राणायाम को अस्वास्थ-कर कष्टप्रद व मुक्ति की प्राप्ति में बाधक कहा गया है। ध्यान का अधिकारी कौन होता है? इसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं कि –

विरज्य कामभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहाम्।
निर्ममत्वं यदि प्राप्तस्तदा ध्यातासि नान्यथा ॥ 269 ॥

– ज्ञानार्णव

अर्थात् यदि तूँ कामभोगों से विरक्त होकर शरीर के विषय में निस्पृह होता हुआ निर्ममता को प्राप्त हो चुका है तो ध्यान का अधिकारी हो सकता है अन्यथा नहीं।

सम्यक् ध्यान की प्रसिद्धि हेतु सुयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का होना अनिवार्य है। सम्यक् ध्यान शतक में जिसका पद्य रूप में वर्णन किया ही गया है।

सुयोग्य द्रव्य :- भव्य आत्मा स्वयं ही आधार, ध्याता और साध्य रूप जीव द्रव्य कहलाता है। स्वस्थ शरीर, श्रेष्ठ-संहनन, पद्मासन, सिद्धासन, खड्गासन आदि आसन और सात्विक, शुद्ध, प्रासुक आहार ये सब अजीव द्रव्य कहलाते हैं।

सुयोग्य क्षेत्र :- आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि –

एकान्ते सामायिकं, निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषू च।
चैत्यालयेषु वापि च, परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥99॥

– रत्नकरण्डक

अर्थात् एकान्त क्षेत्र जो कि बाधारहित (कोलाहल, सांसारिक विषयों से रहित) वन, गृह या चैत्यालय रूप हो ऐसे क्षेत्र पर प्रसन्न चित्त के साथ सामायिक बढ़ाना चाहिए। क्योंकि इसके बिना ध्यानाभ्यास का होना प्रायः असम्भव होगा। परन्तु सुदर्शन मुनीश्वरादि जैसी अभ्यस्त आत्माएँ किसी भी बाधित स्थल में भी ध्यान लीनता को प्राप्त कर सकती हैं।

सुयोग्य काल :- संध्या या सन्धिकाल जिसमें सुषुम्णा नाड़ी (सूर्य और चन्द्र दोनों स्वर रूप) चले ऐसा सुबह, मध्यान्ह और सायं काल ध्यान के लिए उपयुक्त काल समझना चाहिए। ऐसे काल में ध्यान की एकाग्रता व समता रूप सामायिक सहजता से वृद्धि को प्राप्त होती है।

सुयोग्य भाव :- **"समता सर्व भूतेषु, संयमे शुभ भावना।**
आर्त्त, रौद्र परित्यागस् तद्धि सामायिकं मतं॥"

अर्थात् सब जीवों में राग-द्वेष रहित साम्य-परिणामों का होना, संयम-मय अर्थात् प्राणियों की रक्षा करते हुए 25, 16 आदि सत्तर प्रकार की भावनाएँ चिन्तवन में लाना और आर्त्त तथा रौद्र ध्यानों का विसर्जन (त्याग) करना; साथ ही आज्ञा-विचय, अपाय-विचय, विपाक-विचय और संस्थान विचय रूप धर्म ध्यान का चिंतवन-मन्थन अपनी आत्मा में करते हुए एकाग्रता को प्राप्त कर लेना सुयोग्य भाव कहलाता है।

आत्मा में अनादि काल से विषय-कषायों के पनाले बह रहे हैं

जिनकी वासना से मन को स्थिर बनाना और धर्मध्यान की ओर आकृष्ट करना प्रत्येक आत्मा के वश की बात नहीं है लेकिन जो व्यक्ति वानर जैसे चंचल जीवन या मन रूपी भूत को दान, पूजादिक धार्मिक कार्यों में अनुरक्त करता है और कोई विशेष भव्य-आत्मा पंचेन्द्रियों के झरोखों से आने वाले इन्द्रिय-भोग-विषयों की वायु को रोककर कछुये के सदृश अपने इंद्रिय व्यापार को विराम देकर यम, नियम, आसन आदि के साथ सुयोग्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों के साथ ध्यान में लीन होता है तब वह निस्तरंग जल में मुख दिखने के सदृश अपनी आत्मा में अपनी आत्मा का दर्शन करने लग जाता है।

सारे जगत् में भागते मन से न तो ध्यान हो सकता है और न ही कर्म रूपी ईंधन को जलाया जा सकता है। परिग्रह के ममत्व से ध्यान की ऊर्जा बहिर्गामिनी होती है। काम-वासना से ऊर्जा अधोगामिनी होती है और सम्यक् ध्यान से ऊर्जा ऊर्ध्वगामिनी होती है। जगत् की ओर भागने वाली अनेकाग्र-ऊर्जा ने आज तक हमारे अष्ट कर्मों को नहीं जला पाया जैसे कि सूर्य की किरणें सभी ओर फैल रही हों तो भारी गर्मी में भी धूप में पड़े कागज को वे नहीं जला पातीं लेकिन जब दूरबीन (लैन्स) से किरणों को केन्द्रित करके एक स्थान पर छोड़ते हैं तो कागज जल उठता है वैसे ही एकाग्रता रूप सम्यक् (समीचीन) शुक्ल-ध्यान से कर्मों रूपी ईंधन जल जाता है और यति आत्मा केवलज्ञानी परमात्मा व सिद्ध बन मोक्ष-अवस्था पाकर अनन्त काल के लिए अनन्त ज्ञान, दर्शन सुखादि गुणों से सम्पन्न हो लोक-शिखर पर विराजमान होकर जाती है। ॥इत्यलं॥

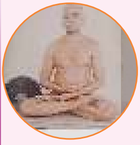

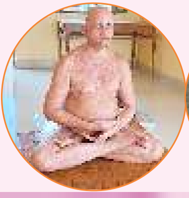
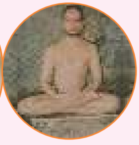
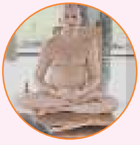

-ओम्-योग-ध्यान की मुद्राएँ

लक्ष्य-योग

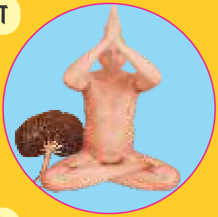

आसन-योग

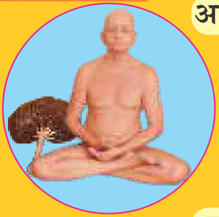

मुद्रा-योग

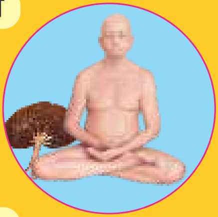

हस्त-योग

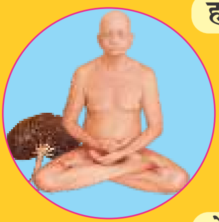

श्वास-योग

ओंकार-योग

मंत्रोच्चारण-योग

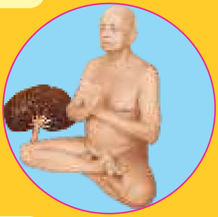

क्षमा-योग

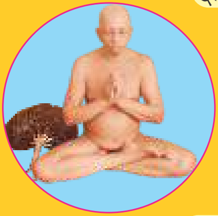

पृथ्वीधारणा-योग

अग्निधारणा-योग

वायुधारणा-योग

जलधारणा-योग

तत्त्वधारणा-योग

ध्यान-योग

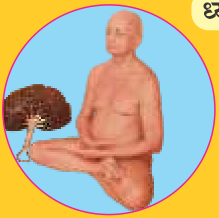

शुभ-भावना-योग

निश्चिंत्य-योग

आनंद-योग

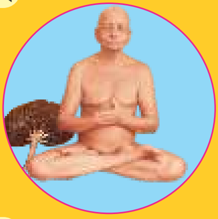

जयकार-योग

उष्ण-योग

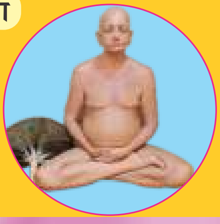

शीत-योग

पंचपरमेष्ठी की मुद्राएँ